सद्गुरु शरणे पाइए आतमबोध प्रकाश

ओम तत्सदात्मने नमः

अंतःकरण के चार अंग हैं- मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। अहंकार को सबसे पीछे लिया गया है। इसके बाद बुद्धि है। बुद्धि के बाद मन है। मन के बाद चित्त है। चिंतवन चित्त का काम है, बूंद-बूंद संकल्प करना मन का काम है। इन संकल्पों में जो बात अहंकार को ठीक लगती है, उसमें बुद्धि मोहर लगा देती है। निर्णय दे देती है, कि यह ठीक है। जो नहीं ठीक लगती, उसे नकार देती है। वैसे बुद्धि में सजातीय आस्था है। लेकिन यह डाली जाती है, वैसे नहीं आती है। ऐसे चार ये अंतःकरण हो गए। बैखरी, मध्यमा, पश्यंती, परा, चार ये वाणियां हो गईं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियां। ये 18 ऐसे तत्व हैं, जो इसमें रहते हैं। यह सूक्ष्म शरीर कहा जाता है। यह अंतःकरण एक मकान जैसा है, जहां क्रिया होती है। जहाँ नाना प्रकार के भागों का एक दूसरे में सम्मिश्रण होता है। ये 18 ऐसे कमरे हैं, जहाँ अटैक (आक्रमण) होता रहता है। रावण का कब्जा होता है, तो राम अटैक करता है। उधर कंस का कब्जा हुआ तो कृष्ण अटैक करता है। धृतराष्ट्र का कब्जा हुआ, तो अर्जुन अटैक करता है। उधर दैत्यों का कब्जा हुआ, तो देवता अटैक करते हैं। इसलिए 18 की संख्या का अलग महत्व है। रामायण में -पदुम अठारह जूथप बंदर, और 18 अक्षोहिणी सेना महाभारत में भी बतायी गयी है। 18 हजार श्लोक श्री मद्भागवत में भी आए हैं। गीता में 18 अध्याय हैं। 18 पुराण भी हैं। ऐसे 18 और भी होते हैं। इसलिए इसका मतलब बाहर से नहीं है। महापुरुषों ने अठारह की संख्या से यह समझाया है, कि इन सब धर्म ग्रंथों में अंतःकरण की बातें हैं। अंतःकरण के 18 तत्वों में अहंकार प्रमुख है। अहंकार राजा है। इसके अधीन हैं- बुद्धि, मन और चित्त। अहंकार इनसे राय लेता है - (एक प्रकार से अपने पसंद की बात में हाँ कराता है)। बुद्धि से कहता है- क्यों, ऐसा ठीक है न ? बुद्धि, मन और चित्त को कहेगी, समझ लो भाई। ऐसे दो चार चिन्तवन आएंगे, और झट से बुद्धि, मन और चित्त से सहमति लेकर, अहंकार के अनुसार निर्णय दे देगी। लेकिन जब बुद्धि में सजातीय भावना डाल दी जाती है,तब बुराई समाप्त हो जाती है, तो अहंकार भलाई में काम करने लग जाता है। जब तक अहंकार, माया के क्षेत्र में काम करता है, तब तक यह सब मेरा है- मेरा है कहता है। और जब भगवान के यहाँ समर्पित हो जाता है गुरु की शरण पकड़ लेता है, ईश्वरीय क्षेत्र में आ जाता है, तो तेरा है-तेरा है, कहने लगता है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इन सबको भगवान के प्रति समर्पित होना चाहिए। तेरा तुझको सौंपते क्या लागे मेरा-ऐसे इसकी धारणा करनी चाहिए।

मै क्या हूँ, ईश्वर क्या है,माया क्या है-अध्यात्म का यह विषय बडा जटिल है। और तुम लोग तो अब इस भौतिक विज्ञान को ही जानते हो। तुम तो सोचते हो कि जैसे दो

पदार्थ अमुक-अमुक मिला देने से पानी बन जाता है, ऐसा ही कोई फारमूला (सूत्र) अध्यात्म का भी मिल जाय, जिससे वैज्ञानिक उसमें कोई निष्कर्ष अपनी बुद्धि से निकाल सकें। तो यह ऐसा विषय नहीं है। वैज्ञानिक तो मैटर (पदार्थ) औरइनर्जी (ऊर्जा) बस इनके बीच ही काम करते हैं। लेकिन भगवान इन दोनों से परे की बात है। इसलिए मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, कोई वहां काम नहीं करते। ये सब जब समाप्त हो जाते हैं, तब उसकी शुरूआत होती है। और वह इतना मालीक्यूल (बारीक) है, कि चारों तरफ है, सर्वत्र परिपूर्ण। वह कोई वस्तु नहीं है, कोई चीज़ नहीं है। जो चीज़ है वह चीज़ है, जो वस्तु है वह वस्तु है। वह तो कुछ है ही नहीं। है से परे है वह। और ऐसा भी है कि उसके अलावा कुछ है ही नहीं। इसलिए यहाँ बुद्धि फेल हो जाती है।

देखो, एक नरेन्द्र नाम का लड़का था, जो आगे चलकर विवेकानन्द नाम से सन्यासी हुआ। जब अपनी पढ़ाई समाप्त करके घर आया, तो उसके माता-पिता ने कहा, देखो यहाँ एक परमहंस नाम से महात्मा जी रहते हैं। उनके दर्शन कर आओ, प्रणाम कर आओ। वह ठहरा लड़का। यह 18 से 30 साल की उम्र ही ऐसी होती है, तेजी रहती है लड़कों में। उसने कहा, अरे! ये साधू लोग सब ऐसे ही होते हैं। खाते-पीते रहते हैं बस। आप लोग क्या मुझे भेज रहे हैं, वहां? घरवालों ने कहा, उनके दर्शन से कल्याण होगा। जैसे-तैसे गया, जाकर प्रणाम किया। परमहंस जी तो महात्मा थे। महात्मा गम्भीर होते हैं। कम बोलते हैं, और यह लड़का तेजी में था। बोला, महात्मा जी! क्या आपने माई (देवी) का दर्शन किया? वे बोले, हाँ! तो वह बोला, क्या आप मुझे माई का दर्शन करा सकते हैं? वे बोले, हाँ, लेकिन तुम अपना परिचय बताओ, क्योंकि माई को बताना पड़ेगा, कि अमुक व्यक्ति आया है। तो फिर माई तुम्हें बुलायेंगी, दर्शन देंगी और तुम्हें निहाल कर देंगी। वह बोला, मैं नरेन्द्र हूँ। परमहंस जी ने कहा, कि नरेन्द्र! तो नरेन्द्र कहां है? हाथ तो हाथ है। पैर तो पैर है - नरेन्द्र कहां है? उसने कहा, यह तो मैं खड़ा हूँ। परमंहस जी बोले- नहीं भाई, यह तो तुम्हारा शरीर है। शरीर तो शरीर है, नरेन्द्र कहां है? अब वह हड़बड़ा गया। बोला, आत्मा। उन्होने कहा आत्मा तो आत्मा है। नरेन्द्र कहां है, वह बताओ। अब क्या बतावे। परेशान हो गया। लाजवाब हो गया।

तो कुछ ऐसी ही बातें हैं। अब हमने जितने तुम्हें गिनाए, उनको हटाना पड़ेगा, तो माई का नाम आएगा। तब नरेन्द्र मिल जायेगा। लेकिन यह बहुत जटिल काम है। इतना जटिल है कि समझते-समझते मन और बुद्धि और अंतःकरण, सब भाग जायेंगे। ये तो इतने मोटे यंत्र हैं, और वह इतना मालीक्यूल विषय है, कि इनकी पकड़ में नहीं आ सकता। तो इन सबके लिए यदि तुम तैयार हो, तो हम फिर बताएंगे कि नरेन्द्र क्या है। मसला तो इतना ही है। फिर माई नरेन्द्र को दर्शन देगी। अब वह सरेण्डर (समर्पित) हो गया। महात्मा जो होते हैं, वे सुपात्र को पहचान लेते हैं। उन्होने प्यार से उसके सिर पर हाँथ रखा और उसकी दुनिया बदल गयी। तो ऐसा है कि कार्य हो गया नरेन्द्र। कारण हो

गई माई। कारण, कार्य में अनुगत है। तो फिर अन्योन्याश्रय सम्बन्ध से, कार्य खत्म होकर कारण बन जायेगा। कार्य, कारण में विलीन हो जायेगा। तब फिर माई ही माई रह जायेगी। तुम उसे पाकर निहाल हो जाओगे। लेकिन इसमें बाधाएं हैं। जो पहले के किये हुये कर्म, संचित और प्रारब्ध के रूप में तुम्हारे साथ हैं। और क्रियमाण, जो रोज तुम करते हो। ये तीन प्रकार के कर्म, मुख्य बाधाएं हैं। इसके लिए सबसे ज़रुरी है कि पहले सतगुरु की शरण पकड़े, और गुरु तुम्हें स्वीकार करले। सतगुरु बताएंगे कि तुम्हारे प्रारब्ध की कमी है, या कि तुम्हारे संचित की बहुतायत है। क्रियमाण तुम्हारा अच्छा नहीं है, इसलिए साधन मेंतुम साफ नहीं उतरोगे। ऐसा जो कुछ भी बताएं। हाँ अगर क्रियमाण सही है, तो धीरे-धीरे एडजस्ट (समायोजित) हो जायेगा। प्रारब्ध का भोग होता जायेगा, और भोगते-भोगते संचित, प्रारब्ध के रूप में घूमकर सामने आ जायेगा-भोग में। इसलिए अपना क्रियमाण ठीक करना, सबसे प्रमुख बात है। तुम्हारा काम है कि यह जो इंगला (इडा) पिंगला दो नाड़ियां हैं, श्वांसा में। एक सूर्यनाड़ी है, दूसरी चन्द्रनाड़ी है। इन दोनों को रेल की पटरी बना लो, और इच्छा को रेलगाड़ी बना लो। पैट बदल कर, इच्छा की ट्रेन को दूसरी लाइन में ले जाना है। दो लाइनें हैं। एक सजातीय है, और एक विजातीय लाइन है। एक अविद्या संस्कारों का क्रियमाण है- विजातीय। और एक सजातीय, विद्या संस्कारों का क्रियमाण। साधक को अपनी इच्छा रूपी ट्रेन को विजातीय से हटाकर सजातीय क्रियमाण की पटरी पर दौड़ाना है। इस प्रकार सद्गुरु के पास जाने से यह जानकारी हो जाती है। जब साधक को जानकारी हो जायेगी, तो फिर वह करेगा। प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण बाधा डालते हैं, वो डालेंगे। इन बाधाओं से भी उसे सद्गुरु ही बचायेगा। और अगर गुरु से भेंट नहीं हुई तो फिर समाज के प्रवाह में बह जाना पडेगा। अब देखो यह विष्णु भगवान शेषसैया में पड़े रहते हैं और लक्ष्मी उनके पैर दबाती रहती हैं। तुम लोगो ने ऐसा चित्र देखा होगा। पता नहीं यह कौन सा ढोंग- धतूर बनाया है महात्माओं ने? लेकिन यह ऐसा नहीं है, जैसा इसे लिया जाता है। विश्व अणु स विष्णु। अणु अर्थात् सबसे मालीक्यूल (सूक्ष्म)। और जब उसका इंलार्जमेंट (विस्तार) होता है, तो सबसे बड़ा बनता है। और जो सबसे बड़ा होता है, वह सबसे मालीक्यूल होता है। और जो सबसे बारीक होता है, वही सबसे बड़ा होता है। यह फार्मूला है यह तो तुम वैज्ञानिक बातें जानते ही हो। ऐसा जो है, वह विष्णु है। जो अणोरणीयान महतो महीयान कहा गया है, वह तत्व है विष्णु और यहां बना दिया हाथ, पैर, आंख और औरत पैर दबाते हुए। यह तो किसी महात्मा ने अपने हृदय में जो अनुभूति प्राप्त की, शिष्यों से बताया, तो उसका चित्र बनाकर छाप दिया गया। ऐसे ही ब्रह्मा हो गया। किसी तीसरे महात्मा ने कुछ अलग अनूभूति किया, और शंकर का चित्र बना दिया गया। यह अंतःकरण की बातें हैं। बाहर ऐसा है नहीं। यह जब कोई साधन करता है, तो ज्ञात होता है। ये सब हार्मोन्स (जीवन तत्व) हैं। एक-एक हार्मोन क्या-क्या करता है? नाभि का हार्मोन क्या पैदा करता है? ब्रेन में क्या कब होता है? त्रिकुटी में

क्या होता है? मूर्धा में क्या होता है? यह सब चक्र या कमल कहे गये हैं। साधना की क्रिया में साधक लग जाता है,तब इनका भेद जान लेता है।

"मूलद्वार से खैंच पवन को उल्टा पंथ धराता है।
नाभि पंकज दल में सोती नागिन जाय जगाता है।
मेरु दण्ड की सीढ़ी बनाकर शून्य शिखर चढ़ जाता है।
भ्रमर गुफा में जाकर सोवै सुरता सेज बिछाता है।
शशि मंडल से अमृत टपकै पीकर प्यास बुझाता है।"

इस प्रकार की जो प्रक्रियाएं हैं, समझने की हैं। अब जैसे इन्हें कमल कहा तो गया, लेकिन वहां कमल नहीं हैं। अगर हम पेट फाड़ कर देखें, तो वहां कमल नहीं रखा है। यह तो मांस का लोथा है। कहते हैं, 6 पंखुडी का नाभि कमल है। अब यहां (पेट) फाड़कर देखें, तो कमल नहीं मिलेगा। इस झूठीतुम साफ नहीं उतरोगे। ऐसा जो कुछ भी बताएं। हाँ अगर क्रियमाण सही है, तो धीरे-धीरे एडजस्ट (समायोजित) हो जायेगा। प्रारब्ध का भोग होता जायेगा, और भोगते-भोगते संचित, प्रारब्ध के रूप में घूमकर सामने आ जायेगा-भोग में। इसलिए अपना क्रियमाण ठीक करना, सबसे प्रमुख बात है। तुम्हारा काम है कि यह जो इंगला (इडा) पिंगला दो नाड़ियां हैं, श्वांसा में। एक सूर्यनाड़ी है, दूसरी चन्द्रनाड़ी है। इन दोनों को रेल की पटरी बना लो, और इच्छा को रेलगाड़ी बना लो। पैट बदल कर, इच्छा की ट्रेन को दूसरी लाइन में ले जाना है। दो लाइनें हैं। एक सजातीय है, और एक विजातीय लाइन है। एक अविद्या संस्कारों का क्रियमाण है- विजातीय। और एक सजातीय, विद्या संस्कारों का क्रियमाण। साधक को अपनी इच्छा रूपी ट्रेन को विजातीय से हटाकर सजातीय क्रियमाण की पटरी पर दौड़ाना है। इस प्रकार सद्गुरु के पास जाने से यह जानकारी हो जाती है। जब साधक को जानकारी हो जायेगी, तो फिर वह करेगा। प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण बाधा डालते हैं, वो डालेंगे। इन बाधाओं से भी उसे सद्गुरु ही बचायेगा। और अगर गुरु से भेंट नहीं हुई तो फिर समाज के प्रवाह में बह जाना पडेगा। अब देखो यह विष्णु भगवान शेषसैया में पड़े रहते हैं और लक्ष्मी उनके पैर दबाती रहती हैं। तुम लोगो ने ऐसा चित्र देखा होगा।

जब साधक आया गुरु के पास, तो गुरु उसे देखता परखता है। इक्जाम (परीक्षा) लेता है। इसका परसेंटेज वगैरह कैसा है? यह साधना करेगा या कामनाओं से भरा हुआ है अथवा कामना रहित हो गया है। बस उसके हिसाब से उसकी एडजस्टिंग हो जाती है। उसी के हिसाब से उसे साधना बताई जाती है। और अगर उसे परफेक्ट या पूरी साधना बता दी जाय तो कर नहीं पाएगा, समझेगा ही नहीं।

'आरत अधिकारी जहं पावहिं। गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं।'

आर्त मिल जाय, अधिकारी मिल जाय, अनुरागी मिल जाय, फर्स्ट क्लास मिल जाय, अनेक जन्म में पुण्य किया हुआ शुद्ध अन्तःकरण का साधक मिल जाय, तो जबरदस्ती बताना पड़ता है। उसे सम्यक बोध देना पड़ता है। बुद्धि ऐसी बन जायेगी, कि बताना पड़ेगा। और अगर उसमें योग्यताएं नहीं हैं तो, जो हम देना चाहते हैं, नहीं दे पायेंगे। बुद्धि कुंठित हो जायेगी। हमारा मूड (मनःस्थिति) है, हम बताना चाहते हैं, लेकिन हमें टाइम न मिलेगा। यह तो नेचुरल सिस्टम (स्वाभाविक तरीका) है। परमात्मा का सिस्टम है। यह मनुष्य का बनाया हुआ सिस्टम नहीं है, यह आटोमैटिक (स्वचालित) सिस्टम है। जैसे कुछ भर गया है, लेकिन निकल नहीं सकता। इस तरीके से उसकी क्या स्थिति है – यह देखा जाता है। अगर कोई योग्य साधक मिल जाय, तो फिर बाजी मार ले जाय।

सत्गुरु की हाट अलग लागी, सतगुरु की ।
वस्तु अमोल खोल गुरु बैठे, लेवेगा कोई बड़भागी ।।
आए व्यापारी सौदा करि गए, जनम-जनम के अनुरागी।
पड़े रहे मैदान मढ़ी में, सकल कामना जिन त्यागी।।
कहै कबीर सुनौ भाई साधौ, भक्ति भीख उनसे मांगी।

इस तरीके से ऐसे महापुरुष जो होते हैं, उन्हें कहते हैं सद्गुरु, मुक्तपुरुष। "मुक्तस्य किं लक्षणं-निर्भयं।" निर्भय वही है जो आत्मदर्शी है। बाहर की दुनिया से उन्हें कोई मतलब नहीं रहता। वे अन्तर्जगत देखते रहते हैं। अन्तर्जगत में सोचते हैं। अन्तर्जगत में हंसते हैं, अन्तर्जगत में रोते हैं, अन्तर्जगत की बात करते हैं। उनका दिमाग कम्प्यूटर हो गया है। सब कुछ भरा है, उसमें। अब वह मुक्त महात्मा इस तरीके से रहते हैं। हाँ, इतना बाहर वालों को पता चलेगा, कि विलक्षणता है उनकी बुद्धि में। विलक्षणता है उनके शरीर में। लोग इतना ही जान सकते हैं। बाकी नहीं जान सकते। ऐसे महापुरुष के सामने अपना सम्पूर्ण समर्पण करने वाला भाग्यशाली साधक कृतार्थ हो जाता है। अब एक बीमारी और है, कि जब हम साधना में लगेंगे तो उसमें बाधा भी आती है। इसे परीक्षा समझना चाहिए जैसे कोई गांव का लड़का घर से भाग कर शहर में गया, जहां बनिया दुकान लगाए बैठे रहते हैं। किसी सेठ की दुकान के सामने से निकल रहा था। उसने लडके को बुलाया, यहां आओ जी। कहां के रहने वाले हो? क्या नाम है? क्यों घूम रहे हो? पूछा, तो बताया, कि नौकरी के लिए घूम रहा हूं। सेठ ने पूछा- हमारे यहाँ काम करोगे? हाँ करूंगा। अच्छा ठीक है, आ जाओ। सेठ ने चार आना इधर, आठ आना उधर, दूकान में चुपचाप डाल दिया। खुद निकल कर बाहर गाड़ी के पास खड़ा हो गया, और बोला, ऐ लड़के ! दुकान साफ करके बंद कर दो। लड़के को सफाई करने में जो पैसे मिले, जेब में धर लिया, बतायानहीं । बस, सेठ तो देख ही रहा था। तो जब दूसरे दिन वह आयेगा, तो जानते हो, वह लड़के से कुछ बोलेगा नहीं। मारेगा चार झापड़ और निकाल भगाएगा। फेल (असफल)

हो गया। तो जब छोटी-छोटी बातों के लिए परीक्षा ली जाती है, तो परमात्मा जैसी बड़ी चीज़ के लिए हम जायेंगे, तो परीक्षा क्यों नहीं होगी? परीक्षा तो होगी। जैसे ही साधक नाम जप में लगा,ध्यान में लगा, और कुछ आगे बढ़ा, तो भगवान परीक्षा लेने लगते हैं। व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरित, भ्रांतिदर्शन, अलब्ध भूमिका अनवस्थितत्व आदि विघ्न आने लगेंगे। भगवान अपनी माया को आदेश करता है, कि देखो तमाम लोग यहाँ भीड़ न लगायें। तुम उन्हीं को हमारे पास तक आने दो, जो आने लायक हों। जो आने लायक नहीं हैं, उन्हें वहीं रोको। माया को इक्जामिनर (परीक्षक) बना दिया। अब प्रकृति इक्जामिनर बनकर साधक की परीक्षा लेती है। जो अच्छे गुरु का आश्रय लिए है, ऐसा साधक इन बाधाओं को पार करके आगे निकलता जाता है। और जो कमजोर हैं वे वहीं रुक जाते हैं, प्रगति नहीं कर पाते हैं। अर्न्तजगत का कुशल खिलाड़ी समर्पण शील साधक अध्यात्मसाधना में सफल होता है। सूक्ष्मजगत की बातें सूक्ष्मबुद्धि से ही समझी जा सकती हैं। स्थूल पदार्थों में रमण करने वाली बुद्धि प्रायः यहां फेल हो जाती है।

गोस्वामी जी सूक्ष्मदर्शी तत्वज्ञ महात्मा थे। उनका रामचरितमानस अध्यात्मविद्या का ग्रंथ है। उसमे बाहर की कथा कहानी गौण विषय है। मुख्यविषय के रूप में मानस है। अब देखिये यह काम (कामदेव) दिखायी नहीं देता, लेकिन सबको नचाता रहता है। मोह दिखाई नहीं देता, लेकिन सबको नचाता रहता है। क्या इन्द्र किसी को कभी दिखाई दिया? क्या नारद दिखाई दिया? तमाम किताबों में लिखा मिलता है - कि देवता अमर हैं, लेकिन मिले नहीं कभी किसी को। तो ये अन्तःकरण की चीजें हैं। बाहर होतीं तो मिलतीं। स्थूलरूप होता इनका, तो देखने में आते। काम, क्रोध, लोभ, मोह सब अन्तःकरण में रहते हैं। ये देवता, दैत्य या राम, सुग्रीव सब सूक्ष्म जगत के अवयव हैं, जो स्थूल पात्रों के रूप में नाटक में दिखाए जाते हैं। एक ही आदमी राम बन गया, सुग्रीव बन गया, हनुमान बन गया। बन्दर की भाषा राम को समझ में आ जाती है, राम की भाषा बन्दर को समझ में आ जाती है। क्या कभी सोचा किसी ने, यह सब कैसे सम्भव है? राम लंका तक गए, और भाषा की प्राब्लम (समस्या) नहीं आयी, आनी चाहिये। रामायण में तुलसीदास ने इस ओर ध्यान क्यों नहीं दिया? हाँ, तो अगर बाहर की बात होती तो ध्यान देते। यह सब अन्तःकरण की प्रक्रियाएं हैं। वहां भाषा की प्राब्लम ही नहीं है। राम कहीं गए हों, तो भाषा की प्राब्लम आवे। यहां तो आसक्ति ही लंका है- तुलसीदास ने विनय में लिखा है- 'वपुष ब्रह्माण्ड सुप्रवृत्ति लंका'। आसक्ति ही लंका है-यह सबसे सुन्दर है, सोने की है। यह काया रूपी किला है। सोना सबसे सुन्दर है। इसलिए इसे सोने की कहा गया है। मोह ही रावण है, क्रोध ही कुंभकर्ण है, काम मेघनाद है, लोभ नारांतक है, अभिमान अहिरावण है। जीव ही विभीषण है, जो इनके बीच में लात-घूंसा खा रहा है, परेशान है। कितना अच्छा चित्र खींचा है गोस्वामी जी ने। लेकिन कोई समझता नहीं। वहां लंका जा रहे हैं। यहां अपने अंदर नहीं देखते, जहां इन राक्षसों के बीच पड़े लात घूंसा खाते विभीषण की तरह, काम,

क्रोध, लोभ, मोह से दुर्गति को प्राप्त हो रहे हैं। यहां अखाड़ा बनाए हुए हैं ये राक्षस। यह कोई नहीं समझता कि – ''मोह सकल व्याधिन कर मूला।'' यही मोह रूपी रावण अन्दर आतंक मचाये है। लोग अपने अंदर की खबर नहीं लेते, और वहां हिमालय को राजा बना रहे हैं, मैना को उसकी पत्नी बनाया। उनसे पार्वती पैदा हुई। क्या यह सब अस्वाभाविक बातें नहीं हैं? यह बात कोई क्यों नहींसमझता, कि शंकर क्या है, पार्वती क्या है? जब साधक साधना करने लगता है, तो ये सारे हार्मोन्स (जीवनतत्व) ट्रांसफार्म (रुपांतरित) होने लगते हैं। जितने हार्मोन्स हैं अन्तःकरण में, जितने नर्व्स (नाडिया) हैं, ये सब जाग्रत होकर मदद करने लगते हैं। इनका सबका रूपान्तरण होने लगता है। मानस की इस प्रक्रिया को कथानक का रूप दिया गया है तमाम ऋषियों ने अपने अन्तःकरण के रिसर्च (अनुसंधान) लिखे हैं। किसी ने देव–दानव संग्राम लिखा है। तो किसी ने राम–रावण संग्राम लिखा है। किसी ने कंस–कृष्ण संग्राम लिखा है। किसी ने महाभारत लिखा, किसी ने पुराणों का संग्राम लिखा। इनके मर्म को कोई नहीं समझता, बस मान लिया कि शंकर जी कैलाश में रहते हैं। कैलाश में तो बर्फ जमी रहती है। वहाँ कोई कैसे रहेगा? सर्प जरा सी ठंडी में मर जाते हैं, बर्फ में कैसे रहेंगे? कहते हैं, शंकर जी के शरीर में सर्प लिपटे रहते हैं। सही चीज़ को कोई समझता नहीं है। कितना अपभ्रंश कर दिया गया है, सही बात का? विचार कोई करता नहीं, रूढ़ि को पकड़े चल रहे हैं। इसलिए व्यर्थ की बातों में उलझे रहते हैं। बाहर समाज में जात–पांत के झगड़े होते हैं। जबकि सबकी एक जाति है– मानव जाति। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह तो साधना के स्तर हैं। जब साधक साधना के प्रारम्भ में होता है, विकारों से ग्रस्त रहता है, तब वह शूद्र कहलाता है। फिर धीरे–धीरे सेवा के द्वारा पुण्य की पूंजी बनाकर कुछ आगे बढ़ता है, तो वह वैश्य हो जाता है। फिर विजातीयों को मारकर, सजातीयों की विजय करा लेता है अन्तःकरण में, तो क्षत्रिय कहलाता है। तीसरी श्रेणी का साधक होता है। फिर आगे ब्रह्म में स्थिति पा लेता है तो ब्राह्मण हो जाता है। सबसे श्रेष्ठ बन जाता है। हर साधक इस तरह शूद्रस्तर से उठते हुए क्रमशः वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण की श्रेणी में आता है। यह महात्माओं का तरीका है। लोग इस तरीके को स्वीकार कर लें तो समाज का बड़ा हित हो सकता है। कोई भी साधना करके निम्न स्तर से उच्चतम स्तर में जा सकता है। अगर कुछ नहीं करेगा तो शूद्र तो है ही– जन्मना जायते शूद्रः।

अब आज क्या है कि हम बने बैठे हैं श्रेष्ठ, और करते कुछ भी नहीं हैं। तो इसके लिए गुरु की शरण में नाम का आश्रय लेना चाहिये। और प्रार्थना करना चाहिए–

''सतगुरू पैयां लागौं, नाम लखा दीजै हो।
जनम–जनम का सोया मेरा मनुआ
शब्दन मार जगाय दीजै हो। –

सतगुरू पैयां लागौं।''

गोस्वामी जी कहते हैं,

नाम लेत भवसिन्धु सुखाहीं। सुजन विचार करहु मनमाही।। लेकिन इसका भी एक तरीका है कि कैसे नाम जप से लाभ लिया जाय। यह सब करने से ही पता चलेगा।

'नाम निरूपन नाम जतन ते।सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन ते'।

जैसे रत्न जब हाथ में आ जायेगा, तो उसकी कीमत का पता लगेगा। ऐसे ही जब नाम तुम्हारे हृदय में आ जाएगा, तो नामी का पता अपने आप लग जायेगा। फिर कहते हैं,

'बारक नाम जपत जग जेऊ। होत तरन् तारन नर तेऊ'।

एक बार भी जो नाम का जप कर लेता है, वह भव सागर से पार हो जाता है। और लोगों को तारने की क्षमता उसमें आ जाती है। वह कौन नाम है, जिसका इतना बड़ा महत्व है- यह साधक को गुरु बताते हैं। और जब साधक इसके योग्य हो जाता है, तब बताते हैं। ऐसे सबको नहीं बताते हैं। जब नाम जपा जायेगा, तब अन्तःकरण में रूप खड़ा हो जायेगा। जब रूप आ जायेगा, तो ये काम, क्रोध, लोभ आदि जितने शत्रु हैं, सब निष्क्रिय हो जायेंगे। सद्गुरु सक्रिय हो जायेंगे, तो फिर रहस्य खुलने लगेगा। समझ में आयेगा कि ब्रह्मज्ञान वृन्दावन है, मन मथुरा है, नन्दगांव नियम है। अमृत बरसना, बरसाना है। ये चार धाम, हैं। इनमें ही भगवान की लीला होती है। राधा-राधा जपने से रहस्य प्रकट होता है। जब अन्तःकरण में कम्युनिकेशन होने लगता है, तो फिर विरज बन जाता है। वि से वीर्य (पुरुष), रज से स्त्री। दोनों के संयोग से तीसरी चीज़ पैदा हो जाती है, बच्चा पैदा होता है। लेकिन यहाँ विरज का मतलब रज और वीर्य से रहित, अर्थात अलौकिक रूप से अन्तःकरण में पैदा होता है। यही विरज है। वह एक स्थिति है, जो साधक के अन्दर बनती है। वह दिखाई देने की चीज नहीं है। इस रहस्य लीला में प्रवेश बहुत आगे जाकर होता है। पहले तो नाम और रूप को लेना पडेगा। जब स्वरूप पकड़ में आ जायगा, तो रास्ता मिल जायगा।

'आगे-आगे राह देत है पाछे राखै नीत।
ना हां करै नहीं नां बोलै, है दोनों के बीच।'

वही सब बताएगा अन्दर से, बाहर दिखाई नहीं देता वह। उसकी लीला अलौकिक है- बिनुपग चलै, सुनै बिनुकाना। कर बिनु करम करै विधि नाना।

इसलिए ये सब बुद्धि से परे की बातें हैं। अनुभव क्षेत्र की बातें हैं। साधना एक अलग ढंग की पढ़ाई है। उसका भी कोर्स (पाठ्यक्रम) होता है। कोर्स पूरा करना होगा। पहले पढ़ाई तो शुरु करो। फिर करो कोर्स की बातें। मूलतः हम बताए देते हैं। साधन हैं,- नाम, रूप, लीला और धाम। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, यह चार वश में होते हैं। तब

अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, ये चार परिणाम आ गए। तो फिर काल, कर्म, स्वाभाव, गुन, ये प्रकृति के जो बंधन हैं, वे समाप्त हो जाते हैं। यह प्रैक्टिकल करने से होगा। यह तो अभी हम थ्योरी बता रहे हैं। यह तो तभी होगा जब प्रैक्टिकल करोगे। कहां, क्या, कैसे होगा– करने से ही पता चलेगा।

तो यह जो पढाई बाहर की तुम लोग किये हो, बी.ए.,एम.ए., इंजीनियरिंग यह अलग है। और अंतर्जगत की पढाई, साधना की पढाई अलग ढंग की है। बाहरी स्थूलजगत का काम मोटे ढंग से चलता है। इसमें गुरुत्वाकर्षण काम करता है। इसके पदार्थों में वेट(भार) होता है, रूप–रंग होता है। ये मोटे पदार्थ हैं। इन्हें देखा, छुआ, पकड़ा जा सकता है। सूक्ष्मजगत में ऐसा नहीं है। वहां के सारे अवयव सूक्ष्म होते हैं, वेट रहित होते हैं, आकार रहित होते हैं। यह हमारा अंतर्जगत सूक्ष्म जगत कहलाता है। यह संकल्पों की दुनिया है। अंतःकरण में सजातीय और विजातीय दोनों प्रकार के संकल्प और चिंतवन आते जाते रहते हैं। सजातीय हमें ईश्वर की तरफ ले जाते हैं, विजातीय माया की तरफ ले जाते हैं। सजातीय देवता कहे जाते है, विजातीय राक्षस कहलाते हैं। सजातीय हमें सब कुछ देते हैं, और विजातीय हमारा सब कुछ ले लेते हैं। यह है हमारे मानस की कहानी। इसीलिए गोस्वामी जी ने अपनी रामायण को रामचरितमानस नाम दिया है– राम के चरित्र मन से। मन के अन्दर जो सजातीय विजातीय का झगड़ा है वहीं राम की पल्टन और रावण की पल्टन के युद्ध के रूप में दिखाया गया है।

गोस्वामी जी संत थे और कवि भी थे। वे दोनो का–बाहर भीतर का–निरूपण अच्छी प्रकार सामंजस्य बैठाकर कर सकते थे। इसलिए रामचरितमानस बनाया उन्होंने। यह सोचकर कि लोग बाहर की कथा को पढेंगे, भगवान की ओर आकर्षण बनेगा, धीरे–धीरे अन्दर की सूक्ष्म बातें पकड़ लेंगे तो आत्मकल्याण का रास्ता पा जायेंगे। जब मानस में प्रवेश मिल जाता है, तो बाहरी बातों का मतलब नहीं रह जाता। नकली छूट गया, असली में आ गये। तो यह विचार किया जाना चाहिए कि यह जो पदार्थ जगत की दुनिया है यह कैसी है, कैसे बनी है, कैसे काम करती है। और जो हमारे अन्दर सूक्ष्मजगत है वह कैसे काम करता है। स्थूलशरीर तो पाँच तत्वों का है। सूक्ष्म शरीर अठारह तत्वों का है। इनमें पाँच ज्ञानेद्रियां, पाँच कर्मेद्रियां, चार वाणियां और मन, बुद्धि, चित्त, अंहकार हैं। कहीं–कहीं सत्रह तत्व माने गये हैं। अब यह जो बाहर की घटनाएं हम पढ़ते सुनते हैं, इनसे हमारे अन्दर की जो गतिविधि है उसमें लाभ लेना चाहिए।

तो जब पार्वती ने शंकर जी से पूछा कि,

राम जो अवध नृपति सुत सोई।
की अज अगुण अलख गति कोई।।

और यह भी कहा कि राजा का लडका राम, ब्रह्म कैसे हो सकता है, यह बात समझ में नहीं आती,

'जो नृप तनय तो ब्रह्म किमि,'

इस पर शंकर जी ने पहले तो बताया कि राम के सही स्वरूप को जानना इसलिए जरूरी है, कि उसे न जानने से यह झूठा संसार सत्य प्रतीत होता है। और अगर उसे जान लिया जाय, तो सारा भ्रम मिट जाता है।

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जाने। जिमि भुजंग बिनु रज पहिचाने।।

जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई।।

फिर इसके बाद बड़ी अच्छी भूमिका बनाकर बताया है कि राम का स्वरूप अलौकिक है, लौकिक नहीं है।

असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाय नहिं बरनी।।

राम सो परमात्मा भवानी।

जो सबके अन्दर आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित है वह परमतत्व है राम। जब ऐसा बताया तो फिर पूछा पार्वती ने कि उस परमात्मा ने मनुष्य शरीर क्यों धारण किया?

नाथ धरेउ नर तन केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु वृषकेतू।।

जब पार्वती ने यह प्रश्न किया, तो शंकर जी ने बताया, कि भगवान का अवतार कैसे होता है? वह निरवयव सावयव कैसे बनता है? तो यह अध्यात्म का विषय है। यह निवृत्ति मार्ग की चीज है, इसे समझने में बारीकी लानी पडेगी।

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढहिं असुर अधम अभिमानी।।

तब तब प्रभु धरि विविध शरीरा। हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा।।

जब अत्याचार बढ जाता है समाज में, राक्षसों का बोलबाला हो जाता है, जैसे आज हो गया है। बदमाशी बढ़ गयी है। माइट इज राइट वाले तैयार हो रहे हैं, रंगबाज तैयार हो गये हैं। जब इस तरह समाज में अधमाई बढ़ जाती है, तब ऐसी कोई ताकत है जो इसे ठीक करने आती है। इस तरह बाहर भी होता है। जैसे इण्डिया का इतिहास देखो, मुगलों से इतने दिनों तक पद दलित रहे। फिर अंग्रेजों से मार खाते रहे, सहन करते रहे। तो सहन करते करते जो इनर्जी भारतीय समाज में तैयार हो गयी,उसका समय आने पर विस्फोट हुआ। इनर्जी तभी तैयार होती है जब आदमी निरीह होकर भगवान को याद करने लगता है। और उधर जो हावी (प्रभावी) होने वाला पक्ष है, उसमें अपनी ताकत का अहंकार आने लगता है। तो फिर कमजोर वाला उठ जायगा और जो हावी रहा ताकत वाला, वह डाउन हो जायगा। तो अंग्रेजों के अत्याचार के विरूद्ध भारतीय समाज में हर आदमी के अन्दर विद्रोह की भावना आई। राष्ट्र भावना आई। त्याग, बलिदान, एकता, ईमानदारी, ये

सब अच्छाइयां समाज में आ गईं। इतना अच्छा रूप बन गया कि जो नेता थे गांधी जी वगैरह ये लोग राम राज्य का सपना देखने लगे। लेकिन देखो स्वतंत्रता के बाद फिर रूप बदलने लगा। फिर बेइमानी बढ़ती जा रही है। समाज में यह अच्छाई-बुराई का चक्र चलता रहता है। जब बुराई उदार हो जाती है, तब भलाई प्रसुप्त रहती है। फिर धीरे-धीरे बुराई प्रसुप्त होती गई तो अच्छाई उदार हो जाती है। कोई कितना भी कोशिश करे और चाहे कि समाज सदा के लिए ठीक हो जाय तो यह संभव नहीं है। रावण राज्य के बाद राम, फिर कुछ काल बाद कंसराज दुर्योधन राज, फिर कृष्ण राज। ऐसे ही यह दुनिया का सर्कुलेसन (चक्र) चलता रहता है। बड़े-बड़े अच्छे से अच्छे और खराब से खराब लोग इस दुनिया में आये और चले गये, लेकिन प्रकृति के इस सर्कुलेसन को बदल तो नहीं पाये। यह ऐसे ही चली है चलती रहेगी। यह आटोमैटिक नियमावली है, स्वाभाविक संविधान है। इसे प्रकृति या माया कहते हैं। इसलिए हमारे मनीषियों ने निष्कर्ष निकाला कि यह संसार असत्य है। यह मात्र एक संसरण है - चक्रवत एक गति है। सबेरा आया फिर शाम आ गई - दिन छाया फिर रात आ गई। सुख आया फिर दुख आ गया, जन्म आया, तो मृत्यु भी है। इस तरह इसमें कुछ है नहीं। फिर भी आदमी इसी के प्रवाह में बहा जा रहा है। दो पाटन के बीच में पिस रहा है।

अध्यात्म ही एक ऐसा रास्ता है कि जिसके जरिए संसार के बाहर निकल कर उस परमात्मा रूप स्थायित्व में जा सकता है आदमी। लेकिन यह समाज का विषय नहीं है अध्यात्म - व्यक्तिगत विषय है। अब इसके मूल में जो सत्ता काम कर रही है, वह तीन रूपो में काम करती है-कारण, सूक्ष्म और स्थूल।इन तीनों स्तर पर कैसे क्या होता है, यह जब तक अच्छी तरह से न समझा जाय तो यह आध्यात्मिक विषय जल्दी पल्ले नहीं पडता। देखिये वही गोस्वामी जी है, वही रामायण है। एक जगह लिखते हैं-

गो गोचर जहं लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।

और फिर दूसरी जगह कहते हैं,

सीयराम मय सब जग जानी।

तो इसमें कौन सी बात सही मानी जाय? मतलब इसमें यह है कि जब तक हमारी दृष्टि मायामयी है, तब तक माया ही माया है बहिर्मुखता में। और अगर अन्दर प्रवेश कर गये, ईश्वर को देखने में लग गये तो हर जगह ईश्वर दिखने लगेगा। यह बर्फ रूप संसार पानी रूप परमेश्वर में बदल जायगा। इस तरह ईश्वर मय दृष्टि हो जाना चाहिए। यह कब होगा, कैसे होगा, गोस्वामी जी ने सब लिखा है इसमें। राक्षसों के अत्याचार से जब धरती अकुलाती है, तब भगवान के आविर्भाव का विधान बनता है। काम, क्रोध आदि मन के विकारों से त्रस्त साधक के अन्तःकरण में जब छटपटाहट पैदा होती है तब वह आर्तभाव से

ईश्वर को पुकारता है, तब उसके अन्दर, वहीं उसके धड़-धरती में ईश्वर के अवतार की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। पहली चीज है कि मन हमारा ईश्वरोन्मुख हो।

जब मन ईश्वर उन्मुख हो जाता है, तो यह मन ही मनु है। हमारा मन जब ईश्वर में लग जाय,माया उन्मुखता छोडकर ईश्वर उन्मुख हो जाय। मन में श्रद्धा आ जाय, मन उस सत स्वरूप में लगने लगे,तो यह जो भजन ध्यान की क्षमता बनी यही सतरूपा है। भजन की प्रशक्ति सतरूपा है। सतरुपा को श्रद्धा भी कहते हैं। तपस्या शुरू हुई। अब कैसे-कैसे उन्होनें तपस्या किया, यह तो हर साधक का अपना अलग कम्पोजीशन (संरचना) है। दृढ़ता से लग गया जब, तो ब्रह्मा आये, शंकर आये, विष्णु आये और बोले यह डिग्री ले लो, वह डिग्री लो।

बिधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आये बहुबारा।।

मागहु वर बहुभाँति लुभाए। परम धीर नहिं चलहिं चलाए।।

प्रगति होने लगी, सिद्धियां आने लगी, प्रलोभन आने लगे। उनकी तरफ रूचि न लेकर साधना में लगे रहे, तो फिर भगवान आ गये, जो सबसे परे है। जब परमात्मा आया जो सबसे सुप्रीम है, वह आ गया,तब उसको पाकर वह कृतकृत्य हुए। दोनों ने कहा,हमे आपके जैसा पुत्र चाहिए। तो ऐसे भगवान का अवतार हुआ। इस तरह से कल्प-कल्प की कथाएं हैं। सब आध्यात्मिक रूप रेखा लिए हुए हैं।

कलप भेद हरिचरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाये।।

कल्प भेद से अवतार होते हैं, भगवान वही एक है। कल्प कहते हैं काया को। हर काया में राम तो मौजूद ही है। उसे अवतरित करने का जिस काया में उपाय हुआ, उसमें वह स्पष्ट हो जाता है, प्रकट होता है। बिना किये कुछ नहीं होता। मन में श्रद्धा आ जाय, निष्ठा और लगन से साधन में जुटे तो परमात्मा प्रत्यक्ष हो जाता है।

तो यह सब बड़ी बुद्धि लगाकर कथाएं बनायी गयी हैं। कहते हैं, जहाँ न जाय रवि, वहाँ जाय कवि।कवि लोगों की बुद्धि बड़ी विलक्षण होती है। आदमी की बुद्धि कहाँ-कहाँ तक नहीं पहुची? देखते हो आज क्या नहीं किया आदमी ने अपनी बुद्धि से? तो जब मनुष्य की बुद्धि अन्तर्जगत की ओर काम करने लगती है, तो अपने स्वरूप तक, परमात्मा तक पहुँचने में मदद करती है। सफलता तो आदमी की लगन और निष्ठा पर निर्भर करती है। इसलिए करना तो पड़ेगा, दिशा बदलनी पड़ेगी। अन्दर से उसके लिए छटपटाहट आये, मन में ग्लानि आये, जैसे मनु को हुई थी,

होइ न विषय विराग, भवन बसत भा चौथपन।

हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयउ हरिभजन बिन।।

उत्तानपाद को जबरन राज्य देकर मनु और सतरूपा निकल गये तपस्या करने, बुढ़ापे में। आज किसी से कहा जाय कि यहाँ रहो, भजन करो यहाँ रहकर, तो कोई तैयार नहीं

घरबार लडके बच्चे छोडने को। बूढ़े तो और भी नहीं रह सकते। कहेंगे सीढ़ी उतरना चढ़ना हमसे कैसे होगा? इस संसार से निकल पाना बड़ा कठिन है। वैराग्यवान साधक ही निकल पाता है। वैराग्य हो हृदय में तो फिर संसार रूपी समुद्र के ऊपर उड़ान भर सकता है, हनुमान की तरह। हमारे तुम्हारे मानस में वैराग्य ही हनुमान है। ऐसे यह जनरल विषय नहीं है साधना का, कि हर आदमी कर लेगा। जिसमें लगन हो, समर्पण हो, जो वैराग्यवान हो, पुरुषार्थी हो, वह कर सकता है।

भगवान कहीं बाहर नहीं मिलता। रामायण गीता सबमें जगह-जगह लिखा है कि परमात्मा सबके हृदय में रहता है। और उसी की उपासना करने से परम शांति मिलती है।

ईश्वरःसर्वभूतानाम्हृद्देशेर्जुन तिष्ठति। भ्राम्ययन् सर्वभूतानि यंत्रा रुढ़ानि भारत।।
तमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत। तत्प्रसादात् परांशांतिंस्थानं प्राप्यसिशाश्वतम्।।

इसलिए जो उससे मिलना चाहे, उसे उधर ही चलना पड़ेगा। भगवान कोई ऐसा नहीं है जो त्रेता मे रहा, फिर कुछ दिन के लिए द्वापर में रहा और अब नहीं है। भगवान तो शाश्वत है, सनातन है। जो तमाम कथाएं भगवान की बनायी गयी हैं, उनका सही आशय लोग ग्रहण नहीं कर पाते, बताने पर भी नहीं समझते। लोग अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार परमात्मा को देखते हैं। देखो जब भगवान राम को, राजा जनक के यहाँ धनुषयज्ञ में लोगों ने देखा, तो सयानी औरतें बच्चे के रूप में देखती हैं। जवान लडकियां पति के रूप में, भक्त लोग भगवान के रूप में, दुष्ट राजा लोग काल के रूप में और,

योगिन परम तत्वमय भासा। शान्त शुद्ध सम सहज प्रकाशा।।

योगियों ने राम को उसके यथार्थ स्वरूप में देखा, परमतत्व के रूप में देखा। यह परमात्मा का वास्तविक रूप है, आत्मा का रूप है। अन्य रूप जो वहाँ देखे गये, वे तो लोगों की भावना के अनुसार थे।

जाकी रही भावना जैसी। प्रभुमूरति देखी तिन्ह तैसी।।

और योगी जो स्वरूप अपने में देखते हैं, सबमें देखते हैं। परमतत्व के अलावा भी कुछ है क्या? इसलिए भगवान को सही रूप में देख पाने के लिए योगिक प्रक्रिया से होकर गुजरना पड़ेगा। योगी बनना पड़ेगा। उससे अभिन्न होकर ही उसे पाया जा सकता है।

जानत तुमहिं तुमहिं होइ जाई।

इन्द्रियों से, मन से, बुद्धि से सबसे परे की बात है। इनकी पकड़ मे आने वाली कोई चीज तो है नहीं परमात्मा। इसलिए उसके विषय में कुछ कहते बताते नहीं बनता। वह तो सोइ जानै जो पावै। वह तो फीलिंग है, अनुभूति है, सेल्फरियलाइजेशन है। वह निरवयव है,

आकाशवत एक पोल है- शून्य, और उसी में अण्डकटाह अनेक भरे पड़े हैं। इस पर विचार करना चाहिए कि यह सब संसार कैसे, कहाँ से हो रहा है?

शून्य भित्ति पर चित्र रंग नहिं तनबिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटइ न मरइ भीति दुख पाइय यहि तन हेरे।।

जिसका आधार शून्य है, ऐसा एक रंगविहीन चित्र है यह झूठा। लेकिन इसकी यथार्थता का बोध हो रहा है। इस तरह से माया को भी अलौकिक कहा गया है। यह समझ के बाहर की बाते हैं। इसलिए आदमी ऊपर के प्रतीकों में, मोटी बातों में उलझा रह जाता है। दुनिया तो रोज बदलती जाती है। कल की बात आज नहीं, आज की बात कल नहीं रहेगी। त्रेता और सतयुग की घटनाएं आज का आदमी लिख रहा है, बता रहा है। कैसे समझेगा उन बातों को? इसलिए समाज की गतिविधि में ऐसे काम नहीं चलता है। वह तो जो सार्वभौमिक, सार्वकालिक बातें होंगी, उनको हर समय माना जायगा। उन्हे हर देश हर काल में मान्यता मिलेगी। तो इन अध्यात्म की बातों को कोई बताता नहीं, बस परंपरावाद का झण्डा ऊचां किये पड़े हैं, सब कहने सुनने वाले। इस तरह से लोगों में अश्रद्धा आती है, ईश्वर के प्रति।

अब देखिये, हर जगह सब ग्रंथो में भगवान को बहुत सुन्दर दिखाया गया है। कोटिकाम छवि श्याम शरीरं। और कोटिमनोज लजावन हारे। ऐसा भरा पडा है, सुन्दरता का वर्णन। लेकिन किसलिए, यह कोई नहीं बताता। अरे भाई, भगवान के प्रति आकर्षण बढ़े। उसकी छवि को हृदय में धारणकर ले। मनोहर छवि में मन फिदा हो जाय, उसे छोड़े न। मन को लगाने के लिए है,यह स्थूल छवि। पहले स्थूल छवि में मन लगेगा,फिर मन के अन्दर सूक्ष्म छवि आ जायगी, फिर असली छवि आ जायगी। मीरा को यही हुआ। बाहर का सावंरिया छूट गया, अन्दर का मिल गया।

हमरे पिया हमरे हिया में बसत हैं, न कहूं आती न जाती।

बाहर की दौड़ खतम हो गयी। इस तरह यह ईश्वर का विषय अपने अन्दर का है। अलौकिक है, यह लौकिक विषय नहीं है। ईश्वर की अलौकिक सुन्दरता की झलक ही अलग होती है। कहते हैं कृष्ण बहुत सुन्दर थे, लेकिन अपने आत्मस्वरूप में वह भी मुग्ध रहते थे। वह प्रकृति पार प्रभु सब उरवासी है। उसके सौन्दर्य को इन बाहर की आँखों से नहीं देखा जाता। उसे अपने में जो पकड़ पाता है, वह निहाल हो जाता है। इसलिए हम तो यहाँ जो बताते हैं, वह साधकों के लिए है, जो भजन करके उस अविनाशी परमात्मा को पाना चाहते हैं। आत्मानुभूति की उस सुप्रीम लेवल (सर्वोच्च स्तर) पर सीढी दर सीढी पहुंच सकता है, अगर कोई साधक पूरी निष्ठा और तत्परता के साथ साधना में जुट जाय।

हरिः ओम